नवीन प्रवृत्तियाँ व लोक कलाऐं

सतेन्द्र कुमार
शोधार्थी
जे.के.पी.पीजी कॉलेज, मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

प्रो० वन्दना वर्मा
शोध निर्देशक
जे.के.पी.पीजी कॉलेज, मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

सारांशिका

वर्तमान युग में लोक कलाओं को एक अच्छी दृष्टि से देखा जा रहा है, आज लोक कला सामान्य जनजीवन का हिस्सा बन रही हैं व आधुनिक परिवेश में नई पीढ़ी अपने फैशन में इसे हाथों–हाथ ले रही है। लोक कलाओं पर अधुनिक प्रवृत्तियों की प्रभाव ही इसे आधुनिक बनाता है। एसी ही नवीन प्रवृत्तियों के प्रभाव को इस लेख के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

मुख्य बिन्दु : लोक कला, आधुनिक कला, लोक, सौन्दर्य, आकर्षण, सज्जा।

प्रस्तावना

लोक अथवा जन सामान्य की कला लोक कला कहलाती है। लोक कला एक ऐसी कला है जिसे न तो किसी की नकल करके और न किसी की प्रेरणा लेकर बनाया जा सकता है। बल्कि यह तो मनुष्य के अन्दर छिपी उसकी अपनी प्रवृत्ति की प्रेरणा से बाहर आती है।

जब मनुष्य पशुओं की भांति गुफाओं में रहता था तब भी वे अन्दर छिपी प्रवृत्ति को बाहर लाते थे। तब भी लोक कला का प्रचलन था। जैसे–जैसे मनुष्य ने अपना रहन, सहन, खानपान में सुधार किया वैसे ही उन्होंने अपने चित्रों में और निखार आया उसकी सौन्दर्य दृष्टि में सुधार आया। उसने आस–पास की वस्तुओं को सुन्दर ढंग से सुसज्जित करना शुरू कर दिया।

लोक कला का अर्थ मुख्यता लोक जनपद समाज से होता है। लोक कला शब्द सर्वाधिक प्राचीन है जिसकी व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा से हुई मानी जाती है। ऋग्वेद में भी लोक शब्द के लिए जनशब्द का प्रयोग किया गया है। Folk शब्द की व्युत्पत्ति Anglo शब्द Falk से हुई है। जर्मन में इसे ठंसा कहते हैं। लोक कला का अर्थ सरल, समस्त, स्वाभाविक समाज है।

'सुन्दरता का जीवन से अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। लोक कला भी इसलिए जीवन्त कला है क्योंकि इसमें सुन्दरता का समावेश है।'

भारत की लोक कला उतनी ही पुरानी है जितनी पुरानी यहाँ की सभ्यता रही है। प्राचीन ग्रन्थों तथा उपनिषदों में भी अनेक जगहों पर लोक शब्द का प्रयोग किया गया है। सभी पर लोक शब्द का प्रयोग किया गया है। सभी ग्रन्थों व उपनिषदों में दिये गये उदाहरणो से पता चलता है कि लोक का अर्थ साधारण जनता से है। इसलिए लोक अथवा सामान्य जन की कला लोक कला कहलाती है।

'लोक कला का उत्पत्ति जादू टोना, अन्य विश्वास, भय, निवारण, प्रवृत्ति तथा जातिगत भावनाओं से मानी जाती है।'

अलंकरण

लोक कला छोटे नगरों तथा गांव के निर्धन कलाकारों द्वारा जन जीवन घरेलू सजावट धार्मिक कृत्यों व उपार्जन का साधन है। उसमें ग्रामीण वातावरण की सहज सम्वेदना, परम्परा, संस्कार एवं विश्वास को जीवित रखने की प्रवृत्ति धार्मिक होती है तथा शिशु के जन्म से लेकर मृत्यु संस्कार तक में लोक कला की भावनाओं को देखा जा सकता है। इसलिए दर्शक भौतिक आकर्षणों से मुक्त होकर आलौकिक सुख का अनुभव करता है। लोक कला की धारा समाज के साथ साथ अपनी दिशा तो बदलती रहती है किन्तु उसका प्रवाह अनवृत होता है। वह समाज की अनुकूलता की मर्यादा में ढलती चली जाती है। अतः उसमें श्लील, अश्लील, अनैतिक, भले, बुरे का प्रश्न नहीं उठता। उसमें ना तो कला विलाओं का प्रसन्न करने की वृत्ति होती है। ना, यशोपार्जन की इच्छा होती है और ना ही कलाकार के व्यक्तित्व को उभारने का प्रयास होता है इसलिए लोक कला जिन तीन प्रवृत्तियों से प्रभावित तथा जो ग्रामीण समुदाय में प्रचलित है।

1. सजावट के प्रति जागरूक
2. अनुष्ठानिक कला
3. उपयोगी कला

सजावट के प्रति जागरूक

सज्जा की यह भावना प्रागैतिहासिक शिला चित्रों में दिखाई देती है। सिन्धु घाटी की सभ्यता से प्राप्त शव भण्डों, दैनिक प्रयोग में आने वाले बर्तन तथा मूर्तियों पर आलंकारिक नमूने दिखाई देते हैं जिन्हें केवल सज्जा के लिए बनाया गया है।

लोक कला का ज्यामितीय एवं सूक्ष्म अलंकरण से भी सम्बंध है। त्रिभुज तथा आयात को प्रारम्भिक रूपों को जो आदिम काबिलों में अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ विद्यमान है। कपडों पर बुनावट में लोक कारीगरों द्वारा बनाये गये लुभावने डिजाइनों में इन रूपों को प्रमुख रूप से देखा जा सकता है। सामान्य जनता त्योहारों, पर्व विवाह आदि के कामों में घर की दीवारों, आंगन, द्वार आदि को बहुत मनमोहक अलंकारिक आलेखनों को फूल, वृक्ष, लताओं से सजाया जाता है।

अनुष्ठानिक कला

सज्जा की भावना से कहीं अधिक धर्म तथा अनुष्ठान से जुडे हुये लोक चित्रों का प्रचलन देखा जा सकता है। प्रचलित अहोई ओठ के अवसर पर दीवारों पर बनाये गये चित्र में पुत्र की दीर्घ आयु की कामना का अनुष्ठान है।

बंगाल में नाग पंचमी पर्व के लिए लोक कलाकारों द्वारा संख्या में नाम चित्र बनाये जाते हैं। इन चित्रों को सभी हिन्दु अपने घरों के दरवाजों पर लगाते हैं।

केरल में भी सर्प पूजा का विशेष महत्व है। इस प्रकार दुर्गा पूजा,

सरस्वती पूजा, गणेश चतुर्थी, गोवर्धन पूजा आदि पर्व पर लोक कलाकार एक से एक सुन्दर दैविक मूर्तियों और चित्रों को बनाते हैं। इन आकृतियों में गेरू, चूना, खडिया, गुलाल, हल्दी, दाल, चावल, आटा, बुरादा, गोबर, मिट्टी आदि प्रयुक्त होते हैं।

उपयोगी कला

लोक कला अनेक प्रकार की उपयोगी वस्तुओं के साथ जुडी है। लोक कलाकारों की चित्रकी तथा स्वयं की आकृति उपयोगिता तथा कला का मिला जुला स्वरूप है। शिल्पों तथा उद्योग के स्वरूप में भी भारतीय लोक कला सदैव से प्रतिष्ठा रही है। जयपुर व जोधपुर जीवन में परिधानों को विशेष आकर्षण उत्पन्न करते प्रतीत होते हैं। साडियों में कला बत्तु के अतिरिक्त बनारस की साडियों भी बहुत प्रसिद्ध हैं। लखनऊ के चिकन तथा गोल कुण्डा में छपे हुए वस्त्र भी अपूर्व कलात्मक होते हैं। धनिक वर्ण जहां मूल्यवान तथा विशेष परिश्रम से अलंकृत कालीनों का उपयोग करते हैं। वहीं निर्धन वर्ग चटाई तथा दरी का उपयोग करते हैं।

दिल्ली तथा जयपुर में चीनी के पात्र भी निर्मित किये जाते हैं। इन्हें ब्लू पाटरी कहते हैं। चन्दन, हाथी दांत तथा लकड़ी के अनेक प्रकार के आभूषण खिलौने, पात्र तथा अन्य उपकरण सारे देश में निर्मित किये जाते हैं।

लोक कला में इन तीनों प्रवृत्तियों का प्रभाव इतना मिला जुला होता है कि उनका सीमा रेखा द्वारा विराजित करके नहीं देखा जा सकता। इतना अवश्य निश्चित है कि चाहे कोई अनुष्ठानिक रूप अथवा उपयोगी रूप हो प्राय सज्जा प्रवृत्ति सदैव उसके साथ जुडी रही है। मनुष्य ने सदैव अवसर मिलते ही रंगों तथा अलंकरण उसके सज्जा का प्रयोग किया है। अभिजात्य वर्ग भी उन कला रूपों को अपने जीवन में सीधे उसी प्रकार अथवा रूपान्तरित करके स्वीकार करता रहा है।

मे लोक कला ग्रामीण समाज का एक अंग है। ग्रामीण जीवन के हर कार्य में लोक कला निहित है। आज के समय में लोक कला में नवीन प्रवृत्तियों के आने से लोक कला आसान और सुलभ हो गई है। नवीन प्रवृत्तियों के कारण कुछ कलाएँ अन्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं तथा जिन पर नवीन प्रवृतियों का प्रभाव अधिक देखते को मिलता है, जो निम्नवत् हैं –

1. रंगोली 2. गोदना 3. वरली

रंगोली

रंगोली भारत की प्राचीन संस्कृति परम्परा और लोक कला है। रंगोली भारत के महाराष्ट्र राज्य से संबंधित है। रंगोली को मुख्य रूप से द्वार की देहरी, आंगन के केन्द्र और उत्सव के लिए निश्चित स्थान के बीच में या चारों ओर बनाया जाता है।

रंगोली एक अलंकरण कला है जिसका भारत के अलग–अलग प्रांतों में अलग–अलग नाम है। इसे उत्तर प्रदेश में चौक पुरना, राजस्थान में मांडवा, बिहार में अट्टपन, बंगाल में अल्पना, महाराष्ट्र में रंगोली, तमिलनाडु में कोल्लम, उत्तराखण्ड में ऐपण कहते है।

यह कलात्मकता और लालित्य आज भी रूप बदलकर शुभ अवसरों पर दिखाई पड़ता है। सम्पन्नता के विकास के साथ आजकल इसे सजाने के लिए शुभ अवसरों की आने की प्रतीक्षा नहीं की जाती। बल्कि किसी भी महत्त्वपूर्ण अवसर को रंगोली सजाकर शुभ बना लिया जाता है। चाहे किसी चीज का लोकार्पण हो या होटलों के प्रचार प्रसार की बात हो रंगों की सजावट अवश्य समझी जाती है। आजकल बाजारों में रंगोली को बना बनाया खरीदा जा सकता है। जिससे सुन्दर व सस्ती रंगोली बनायी जा सकती है। इसके अतिरिक्त आजकल कलाकारों ने रंगोली प्रदर्शनी और रंगोली प्रतियोगिताऐं भी शुरू कर दी हैं। कुछ रंगोलियां ऐसी भी होती हैं जो देखने में कलाकृति की भांति दिखाई देती हैं। इसमें आधुनिकता में आयी नवीन प्रवृत्तियों और परम्परा का समावेश आसानी से किया जा सकता है। आज संसार में रंगोली का महत्व अधिक बढ़ गया है। रंगोली बनाने की प्रतियोगिता और रिकार्ड का भी अद्भुत क्रम शुरू हुआ। 'गिनीज बुक वर्ल्ड रिकॉर्ड तक पहुँचाने वाली पहली महिला विजय लक्ष्मी मोहन थी।'

आजकल नवीन प्रवृत्तियाँ प्रचलन में हैं। रंगोली के लिए कलाकारों ने पानी को भी अपना माध्यम बना लिया है। इसके लिए टब या टैंक में पानी लेकर स्थिर व समतल क्षेत्र में पानी को डाल दिया जाता है। कोशिश यह रहती है कि पानी का हवा या किसी अन्य तरह के संवेग से वास्ता ना पडे। इसके बाद चारकोल के पाऊडर को छिडक दिया जाता है। इस प्रकार कलाकार अन्य सामग्री के साथ रंगोली सजाते हैं।

कुछ रंगोलियां पानी के भीतर भी बनाई जाती हैं। इसके लिए कम गहरे बर्तन में पानी भरा जाता है फिर एक तश्तरी या अमब म पर अच्छी तरह से तेल लगाकर रंगोली बनाई जाती है। बाद में इस पर हल्का सा तेल स्प्रे कर के धीरे से पानी बर्तन की तली में रख दिया जाता है। तेल लगा होने के कारण रंगोली पानी में फैली नहीं। रंगोली पर नवीन प्रवृत्तियों का प्रभाव इस प्रकार पडा है कि संसार में आज प्रसिद्ध है तथा हर समारोह, त्यौहारों, शादी, जन्मदिन में इसका बहुत महत्व है।

गोदना

यह अत्यंत प्राचीन लोक कला है। इस प्रयोग श्रृंगार के लिए होता आ रहा है। गोदना लोक कला सर्वाधिक राजस्थान में देखने को मिलती है। वहां की महिलाऐं व पुरुष मुख्यतः अपने शरीर पर विभिन्न प्रकार के गोदना गुदवाते हैं। यह भारत में गोदना के माध्यम से बहुत पहले प्रचलित थी। पहले यह कला नट और खानाबदोश जनजाति के साथ जुडी थी जिससे यहां व्यवस्था के रूप में अपनाते थे।

भारत में गोदना गुदवाने की प्रथा कम हो रही है। परन्तु विदेशियों ने गोदना के प्रति रूचि दिखाकर व नवीन प्रवृत्तियों का प्रयोग कर लोगों को फिर आकर्षित किया। कुछ समय तक यह कला विलुप्त हो गई थी परन्तु कुछ समय बाद फिर नवीन प्रवृत्तियों के कारण आधुनिक युग में इसका उतना ही प्रचलन है जितना पहले था बल्कि उससे बढ़कर आज वर्तमान में इसका प्रचलन है।

गोदना कला के साथ कई धार्मिक व पुरानी धाराएँ जुडी हैं। लोगों का मानना था कि जब किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है तो केवल एक ही वस्तु उसके साथ जाती है। कुछ लोग पारस्परिक प्रेम, स्नेह आदि के लिए गोदना पसन्द करते हैं। आजकल इसका प्रचलन बहुत देखा जा रहा है। इसका प्रभाव भिन्न है। गोदना शरीर के अन्दर बारीक सुई से किया जाता है। जब उसका रंग हमेशा के लिए शरीर पर रह जाता है लेकिन मेहन्दी

ऊपर से लगाई जाती है और कुछ समय बाद उसका प्रभाव खत्म हो जाता है। आजकल यह कला टेटू के नाम से प्रचलित है। नवीन प्रवृत्तियों का इस कला पर काफी प्रभाव पडा।

मनुष्य इसे शरीर पर उकेरता है। इसे बनवाने में व्यक्ति को बहुत पीड़ा सहन करनी पड़ती है। यह जानते हुए भी कि इसे बनवाने में पीडा होगी तब भी व्यक्ति इसे बनवाना इतना पसन्द करते हैं। यह एक मात्र ऐसी लोक कला है जिसका प्रचलन गांव में कम शहरों में अधिक है।

आजकल इस लोक कला का विदेशों में इतना प्रचलन हो गया है कि 100 प्रतिशत में से 90 प्रतिशत लड़के–लड़कियों के शरीर पर ये लोक कला दिखाई देती है। आज की पीढ़ी में ये लोक कला एक फैशन बन गया है। भारत में कम विदेशों में इसका प्रचलन अधिक है। इससे यह पता चलता है कि कहीं न कहीं आधुनिक युग की चकाचौंध में भी प्रत्येक व्यक्ति किसी ना किसी लोक कला से जुडा है।

प्राचीन से लेकर आधुनिक तक गोदना में निरन्तर नवीन–नवीन प्रवृत्तियों का प्रचलन रहा है तथा गोदना में अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। प्राचीन समय में गोदना को स्त्रियां श्रृंगार के लिए शरीर पर बनवाती थीं लेकिन आधुनिक युग में ये लोक कला एक फैशन के तौर पर देखा जा रहा है। प्राचीन समय में पौराणिक कथाओं पर आधारित गोदने किये जाते थे लेकिन वर्तमान में इसको हर क्षेत्र से जोड दिया गया है तथा विभिन्न प्रकार की नवीन प्रवृत्तियों ने इस कला को और आसान बना दिया है जिससे इस लोक कला का प्रचार प्रसार अच्छी तरह हो रहा है। वर्तमान में इसका प्रचलन और अधिक बढ़ेगा।

वरली

वरली एक प्रकार की जनजाति है जो महाराष्ट्र राज्य के थाने जिले के धानु, तलासरी एवं ज्वाहर तालुकाज में मुख्य जनजातियों के साथ पायी जाती है। ये बहुत मेहनती और कृषि प्रदान लोग होते हैं। जो बांस, लकडी, घास एवं मिट्टी से बनी झोंपडियों में रहते हैं। झोंपडियों की दिवारें लाल काडु मिट्टी एवं बांस से बांध कर बनाई जाती है। दीवारों को पहले लाल मिट्टी से लेपा जाता है। इसके बाद ऊपर से गाय के गोबर से लिपाई की जाती है।

वरली चित्रकला एक प्राचीन भारतीय कला है जो कि महाराष्ट्र की एक जनजाति वरली द्वारा बनाई जाती है और यह कल उनके जीवन के मूल सिद्धांतों को प्रस्तुत करती है। इन चित्रों में मुख्यतः फसल पैदावार ऋतु, शादी, उत्सव, जन्म और धार्मिकता को दर्शाया जाता है। वरली कलाओं के प्रमुख विषयों में शादी का बडा स्थान है। शादी के चित्रों देव, पलघाट, पक्षी, पेड, पुरुष और महिलाएँ साथ में नाचते हुए दर्शाए जाते हैं। एक विशेषता इस कला में यह होती है कि इसमें सीधी रेखा कहीं नजर नहीं आयेगी। बिन्दु से बिन्दु जोडकर रेखा खींची जाती है।

वरली जाति में माश नामक व्यक्ति ने इस कला को व्यवहारिक रूप दिया उसने वरली लोक कला को महाराष्ट्र से बाहर ले जाने की हिम्मत दिखाई और इस कला में नवीन प्रवृत्तियाँ अपनाई उन्होने लोक कथाओं के साथ–साथ पौराणिक कथाओं को भी वरली शैली में चित्रित किया उन्होंने वरली में आधुनिकता का समावेश किया। मिट्टी और गोंद के मिश्रण के साथ–साथ उन्होंने ब्रुश का प्रयोग किया इस प्रयोग से वरली कलाकृति को नये आयाम मिले और उनकी अन्तर्राष्ट्रीय लोकप्रियता बढ़ने के साथ ही वरली जनजाति का आर्थिक स्तर भी सुधरने लगा। आजकल माश के अतिरिक्त शिवराम गोजरे और शरत वलघानी जैसे–

कलाकार भी इस दिशा में कार्य कर रहे हैं। ये लोग कागज और कैनवास पर पोस्टर रंग इस्तेमाल कर रहे हैं। वरली कलाकृतियों की यात्रा घर की गोबर मिट्टी की सतह वाली दीवार से शुरू होकर आज की तिथि में कैनवास तक आ पहुंची है। आजकल ये लोक कला अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी है। लोक कला में नवीन प्रभाव खूब दिखाई देता है। जैसे टी–शर्ट, कपडों पर, थैलों पर, कार्ड पर आदि पर वरली को महत्व दिया गया है।

इस प्रकार से इन तीनों लोक कलाओं में नवीन प्रवृत्तियों का प्रभाव पडा तथा इनका प्रचार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पंहुच पाया।

लोक कला में नवीन प्रवृत्तियों का प्रभाव के दो पहलु सामने आये हैं। सकारात्मक, नकारात्मक, जहां नवीन प्रवृत्तियों से लोक कलाओं का बढ़ावा मिल रहा है। वहीं लोक कलाकारों को नवीन प्रवृत्तियों से नुकसान हुआ है। लोक कलाकार अपनी लोक शैली को छोडकर दूसरे काम में रूचि ले रहे हैं।

वहीं आधुनिक युग में कुछ कलाकार लोक कलाओं से प्रभावित हुए हैं। लोक कला की जिन विशेषताओं ने आधुनिक कलाकारों को प्रभावित किया है वे निम्नलिखित हैं –

1. सरल बाह्य रेखा के प्रति आग्रह। प्रतिरूपात्मकता की प्रवृत्ति।
2. रंगों का आयामों का सरलीकरण। छाया का अभाव।
3. अभिव्यंजना के उद्देश्य से मुद्राओं के अतिरंजना तथा महत्व के अनुसार वस्तुओं का आकार।
4. अभिप्राय अथवा रूठ रूपों को आलंकारिक ढंग से विशेष रूप देने की प्रवृत्ति ।
5. रेखाओं, आकृतियों अथवा बिन्दुओं की पुनरावृत्ति द्वारा लयात्मकता की सृष्टि।

'भारतीय आधुनिक कलाकारों का एक ऐसा वर्ग है जो लोक कला को रूचिकर और अधिक महत्वपूर्ण बनाता है और उनकी कलाकृतियों में लोक जीवन की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। यामिनीराय, पनिक्कर, पी०टी० रेड्डी, लक्ष्मण पै आदि ने इस दिन में उल्लेखनीय कार्य किया।'

लोक कला में जीवन का प्रवाह होता है और भावों की रोचकता भी लोक कलाकार के व्यक्तित्व से साक्षात्कार हो जाता है। लोक कला का धार्मिक पक्ष अन्तयत प्रबल है। प्राचीन लोक कला से आधुनिक लोक कला तक एक धार्मिक पक्ष है जो बदला नहीं है, लोक कला हमारे समाज की धारा है जो हमेशा प्रवाहित होती रहेगी।

सन्दर्भ सूची :

1. कला कोश, आनन्द प्रकाशन, पृ०सं० 71, डा० अर्चना रानी।
2. कला कोश, आनन्द प्रकाशन, पृ०सं० 71, डा० अर्चना रानी।
3. कला, टीजीटी, पीजीटी, समसामयिकी घटना चक्र, पृ०सं० 170
4. विजय मोहन, विजय मोहन लक्ष्मी का व्यक्तिगत, जाल स्थल।
5. कला कोश, आनन्द प्रकाशन, पृ०सं० 65, डा० अर्चना रानी।